स्थानांग सूत्र का प्रतिपाद्य

● श्री तिलकधर शास्त्री

तृतीय अंग-आगम 'स्थानांग' सूत्र में एक से लेकर दश संख्याओं में आगम, दर्शन, इतिहास, खगोल आदि की विविध जानकारियों को वर्गीकृत किया गया है। इससे संबद्ध विषयवस्तु का सुगमता से स्मरण हो सकता है। प्रतिपादन में नयदृष्टि रही है। आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना से प्रकाशित स्थानांगसूत्र की प्रस्तावना श्री तिलकधर जी शास्त्री ने लिखी थी। उसी का अंश यहाँ पर संकलित कर प्रस्तुत किया गया है।
—**सम्पादक**

'स्थानांग' सूत्र ११ अंगों में तीसरा अंग है जिसे हम जैन संस्कृति का 'विश्वकोष' कह सकते हैं। संख्या के क्रम से तत्त्वों के नामों का संकलन करने की सुन्दर शैली में लिखा गया यह एक अद्‌भुत ग्रन्थ है जो संभवतः स्मरण-शक्ति की वृद्धि के लिये निर्मित हुआ होगा। सबसे पहले 'स्थानांग' नाम पर ही विचार करना उपयुक्त होगा।

'स्थानांग' यह शब्द 'स्थान' और 'अंग' इन दो शब्दों के मेल से बना है। स्थान शब्द अनेकार्थक है, परन्तु सूत्रकार को इसके दो अर्थ अभीष्ट प्रतीत होते हैं। 'देशी नाममाला' में स्थान का अर्थ 'मान' अर्थात् परिमाण किया गया है। प्रस्तुत आगम में तत्त्वों के एक से लेकर दस तक के परिमाण अर्थात् संख्या का उल्लेख है, अतः इसे 'स्थान' कहा गया है। 'स्थान' शब्द का अर्थ 'उपयुक्त' भी होता है।[१] प्रस्तुत आगम में तत्त्वों का एक, दो आदि के क्रम से उपयुक्त चुनाव किया गया है, अतः इसे 'स्थान' कहा गया है। अभिप्राय यह है कि यह आगम ऐसा 'स्थान' है जिसमें तत्त्वों की संख्या का उपयुक्त निर्देश किया गया है।

दूसरा शब्द 'अंग' है। वैदिक साहित्य में प्रमुख ग्रन्थों को 'संहिता' अथवा 'वेद' कहा गया है और उनके अध्ययन के लिये सहायक विविध विषयों के शिक्षा, छन्द, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त और कल्प आदि के प्रतिपादक गौण ग्रन्थों को अंग कहा गया है, परन्तु जैन साहित्य में इस शब्द का प्रयोग प्रधान ग्रन्थों के लिये किया गया है। जैन संस्कृति में द्वादशांगी के लिये जिस 'गणिपिटक' शब्द का प्रयोग किया जाता है उस गणिपिटक का प्रत्येक ग्रन्थ एक अंग है, इसीलिये जैनाचार्यों ने श्रुत पुरुष की कल्पना करते हुए 'गणिपिटक' को ही श्रुतपुरुष कहा है और प्रत्येक आगम को उसका एक अंग माना है। अंग समूह भी 'अंग' कहलाता है, इसीलिये शरीर को अंग कहा गया है 'अंग' शब्द 'स्थान' के साथ मिलकर यह ध्वनित करता है कि यह आगम एक ऐसा आगम है जिसमें प्रत्येक तत्त्व की संख्याक्रम से स्थापना की गई है।

'ज्ञान' आत्मा का अंग है, यह आगम एक ऐसा आगम है जिसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा की अंगभूत ज्ञानराशि को एक-दो आदि के क्रम से स्थान दिया गया है। इस अर्थ की भी सूचना दे रहा है 'स्थानांग' यह नाम।

गणिपिटक में 'स्थानांग सूत्र' को तीसरा स्थान दिया गया है जो इसके महत्त्व का प्रतिपादन कर रहा है। विद्वानों का विचार है कि अन्य नौ आगमों के निर्माण के अनन्तर स्मृति एवं धारणा की दृष्टि से अथवा विषय अन्वेषण की सरलता की दृष्टि से स्थानांग सूत्र और समवायांग सूत्र का निर्माण किया गया होगा और इन्हें विशेष प्रतिष्ठा देने के लिये अंगों में स्थान दे दिया होगा।[2] परन्तु यह तथ्य बुद्धि को अपील नहीं करता है।

बात यह है कि यदि नौ आगमों के निर्माण के अनन्तर स्थानांग सूत्र और समवायांग सूत्र का निर्माण हुआ होता तो इनको तीसरा, चौथा अंग न मानकर दसवां ग्यारहवां अंग ही माना जा सकता था, इन्हें चौथा स्थान देने की क्या आवश्यकता थी? दसवां, ग्याहरवां स्थान देने पर इनकी महत्ता में कोई अन्तर भी नहीं आ सकता था, क्या दसवें प्रश्नव्याकरण सूत्र और ग्यारहवें विपाक सूत्र की महत्ता कम हो गई है?

मालूम होता है कि आचारांग और सूत्रकृतांग को पहले इसलिये रखा गया है कि नवदीक्षित साधु आचार में परिपक्व हो जाए, वह साधु—वृत्ति के नियमों से परिचित हो जाए, हेय—उपादेय को जान जाय। इस प्रकार निरन्तर आठ वर्ष तक साधुचर्या में परिनिष्ठित होकर वह ज्ञातव्य विषयों की नामावली को जाने, उनके सामान्य रूप से परिचित हो जाय और फिर वह क्रमशः प्रत्येक विषय की व्याख्या अन्य आगमों से प्राप्त करे, इसलिये स्थानांग सूत्र को तीसरा स्थान दिया गया होगा।

स्थानांग और समवायांग को बुद्धिगम्य कर लेने के अनन्तर एक प्रकार से श्रुत साधक समस्त आगमों का वेत्ता हो जाता है, इसलिये आगमकार उसे श्रुतस्थविर कहते हैं और व्यवहार सूत्र के दसवें उद्देशक के पन्दहवें सूत्र में श्रुतस्थविर को श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि वन्दना, छन्दोऽनुवृत्ति तथा पूजा सत्कार से श्रुत—स्थविर का विशेष सम्मान करना चाहिये।[3] वहाँ यह भी कहा गया है कि जो 'स्थानांग और समवायांग का अध्येता है और आठ वर्ष की दीक्षावाला है वह आचार्य, उपाध्याय, गणी, गणावच्छेदक, प्रवर्तक आदि पदवियों के योग्य होता है। शास्त्रकार की यह व्यवस्था स्थानांग सूत्र की महत्ता और उसके तृतीय स्थानस्थ होने के कारण का निर्देश करती है।

व्यवहार सूत्र का यह कथन है कि "अट्ठवासपरियागस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ ठाणसमवाए उद्दिसित्तए"— अर्थात् आठ वर्ष का दीक्षित साधु स्थानांग और समवायांग के अध्ययन के योग्य होता है, उसका कारण भी यही बताया गया है कि चार वर्ष तक दीक्षापर्याय का आचारनिष्ठ होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालन करने वाला स्थिर-बुद्धि हो जाता है, अत: वह अन्य मतावलम्बियों से प्रभावित नहीं हो पाता। पाँचवें वर्ष में दस कल्प व्यवहारों को जान कर वह और भी दृढ़ आस्था वाला हो जाता है, अत: इसके अनन्तर वह स्थानांग और समवायांग का भलीभाँति अध्ययन कर सकता है।[४]

यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है कि क्या स्थानांग सूत्र का अध्ययन केवल आठ वर्ष की दीक्षा पर्यायवाला साधु ही कर सकता है? अन्य नहीं? किन्तु आगमों में अनेक श्रावकों द्वारा सूत्रों के अध्ययन का उल्लेख प्राप्त होता है, अत: इसका यही आशय है कि पूर्ण आचारवान बनकर श्रद्धापूर्वक ज्ञान के चौदह अतिचारों को ध्यान में रखकर श्रावक–श्राविका वर्ग भी इसका अध्ययन कर सकता है।

अध्ययन संख्या

स्थानांग सूत्र में १० अध्ययन हैं और १० अध्ययनों का एक ही श्रुतस्कन्ध है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्ययन के चार–चार उद्देशक हैं, पंचम अध्ययन के तीन उद्देशक हैं और शेष छ: अध्ययनों के एक–एक उद्देशक हैं। इस प्रकार स्थानांग सूत्र १० अध्ययनों और २१ उद्देशकों में विभक्त है।

श्रुतस्कन्ध

स्थानांग सूत्र में केवल एक श्रुतस्कन्ध है। अनेक अध्ययनों के समूह को स्कन्ध कहा जाता है। स्कन्ध वृक्ष के उस भाग को अर्थात् तने को कहते हैं जहाँ से अनेक शाखाएँ फूटती हैं। जब किसी श्रुत अर्थात् शास्त्र में वर्ण्य विषय एवं शैली आदि की दृष्टि से अनेक विभाग किये जाते हैं, उन्हें श्रुतस्कन्ध कहते हैं। जैसे आचारांग को बाह्य आचार और आन्तरिक आचार की दृष्टि से दो भागों में बांट दिया गया है। सूत्रकृतांग को पद्य और गद्य की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया गया है। ज्ञाताधर्म कथा को आराधक और विराधक की दृष्टि से और प्रश्नव्याकरण सूत्र को आस्रव और संवर की दृष्टि से दो–दो भागों में बांटा गया है। इस प्रकार इन शास्त्रों के दो–दो श्रुतस्कन्ध हैं, परन्तु प्रस्तुत स्थानांग में एक ही श्रुतस्कन्ध हैं, क्योंकि यहाँ आदि से लेकर अन्त तक एक आदि संख्या के क्रम से तत्त्व निरूपण रूप विषय का प्रतिपादन किया गया है।

अध्ययन

जैनागमों का विषय-विभाग की दृष्टि से जब वर्गीकरण किया जाता है तब बड़े प्रकरण को अध्ययन और छोटे प्रकरण को उद्देशक कहा जाता है। बड़े प्रकरण के लिये अध्ययन शब्द का प्रयोग केवल जैनागमों में ही प्रयुक्त हुआ है। कभी–कभी विषय-सूचक शब्द को इसके साथ संयुक्त करके समग्र अध्ययन के वर्ण्य विषय का निर्देश कर दिया जाता है। जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अकाममरणिज्जमज्झयणं' 'अकाम—मरणीयमध्ययनम्'। इस अध्ययन-नाम से ही पूरे अध्ययन के वर्ण्य-विषय का बोध हो गया है।

अध्ययन शब्द विषय-ग्रहण पूर्वक स्वाध्याय का निर्देश करता है, क्योंकि अधि=अपने आप में, अयन=गमन। शास्त्र का इस प्रकार से अध्ययन जिससे कि अध्येता वर्ण्य-विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करके आत्मनिष्ठ हो जाय।

निक्षेप के अनुसार नाम-अध्ययन, स्थापना-अध्ययन, द्रव्य-अध्ययन और भाव-अध्ययन के रूप में चार प्रकार के अध्ययन बताए गए हैं, परन्तु शास्त्रकारों को चारों में से भाव अध्ययन ही विशेष रूप से इष्ट है। शास्त्रकार उसे भाव अध्ययन कहते हैं जिसके अध्ययन से शुभ कर्म में प्रवृत्ति हो, आत्म-तत्त्व का स्मरण हो और उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि हो।

अध्ययन को 'अक्षीण' भी कहा जाता है, क्योंकि स्वाध्याय से ज्ञान कभी क्षीण नहीं होने पाता। अध्ययन को 'आय' भी कहा जाता है, क्योंकि इससे ज्ञान, दर्शन और चारित्र का लाभ होता है। अध्ययन को 'क्षपणा' भी कहते हैं, क्योंकि स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षय होता है। स्थानांग सूत्र के स्वाध्याय की भी यही विशेषता है, अत: इसका अध्ययनों में विभागीकरण किया गया है।

पद संख्या

जैनागमों में पद संख्या का निर्णय एक जटिल समस्या है जैसे कि समवायांग सूत्र में स्थानांग की पद संख्या ७२ हजार बताई गई है। नन्दीसूत्र में भी 'बावत्तरि—पय—सहस्सा' कह कर ७२ हजार पद संख्या का ही निर्देश किया गया है। दिगम्बर सम्प्रदाय स्थानांग की पद संख्या ४२००० बताता है, परन्तु वर्तमान में उपलब्ध किसी भी प्रति में यह पदसंख्या प्राप्त नहीं होती।

पद क्या है?

व्याकरण शास्त्र में विभक्ति युक्त सार्थक शब्द को एवं प्रत्ययान्त धातु रूप को पद कहा गया है। इस दृष्टि से ''राम: वनं गच्छति'' इस वाक्य में तीन पद हैं। 'यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदम्'' की उक्ति के अनुसार पूर्ण अर्थ के परिचायक वाक्य को भी पद कहा जाता है। इस दृष्टि से ''राम: वनं गच्छति' यह एक वाक्य ही पद है। श्रीहरिभद्र और आचार्य मलयगिरि को पद की यही परिभाषा इष्ट है।

छन्द शास्त्र में पद्य की एक पंक्ति को पद कहा जाता है। जैसे कि 'एसो पंच णमोक्कारो' यह अनुष्टुप छन्द का एक पद है।

दिगम्बर सम्प्रदाय अर्थ—पद, प्रमाण-पद और मध्यमपद भेदों के रूप में तीन प्रकार के पद मानता है। ऊपर प्रदर्शित प्रथम और द्वितीय पद अर्थ पद है और छन्द शास्त्रोक्त पद को प्रमाण पद कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षरों या मात्राओं का एक निश्चित प्रमाण होता है।

१६ अरब, ३४ करोड़, ८३ लाख, ७ हजार ८ सौ ८८ अक्षरों का एक मध्यम-पद होता है। इतने अक्षरों से ५१०८८४६२१ अनुष्टुप् छन्द बनते हैं। मध्यम पद की गणना से यदि स्थानांग की पद संख्या ४२००० मान ली जाय तो सम्भवत: पूरे जीवन में कोई मुनीश्वर स्थानांग का भी अध्ययन न कर पाएगा। परन्तु शास्त्रकारों ने लिखा है कि धन्ना अनगार ने नौ मास में और अर्जुन मुनि ने छ: महीने में ११ अंगों का अध्ययन कर लिया था। मध्यम पद-परिमाण मान लेने पर यह उल्लेख सर्वथा असम्भव सा लगता है, अत: सुबन्त तिङन्त को पद मानकर की जाने वाली गणना कुछ बुद्धि गम्य हो सकती है। इस दृष्टि से स्थानांग की पद संख्या ७२००० स्वीकार की जा सकती है।

श्री अभयदेव सूरि कृत व्याख्या-सहित आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित स्थानांग सूत्र में जो संख्या दी गई है वह सूत्र संख्या ७८३ ही है।

बत्तीस अक्षरों से निर्दिष्ट श्लोक परिमाण को प्राचीन लिपिकार 'ग्रन्थाग्र' कहा करते थे और वे इसी ग्रन्थाग्र परिमाण से लेखन का पारिश्रमिक लिया करते थे। ग्रन्थाग्र की दृष्टि से आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित स्थानांग की श्लोक संख्या ३७०० दी गई है (पृष्ठ ५२६) परन्तु भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट के वॉल्यूम १७ के १–३ भागों में निर्दिष्ट स्थानांग की प्रतियों में ग्रन्थाग्र संख्या ३७७० तथा ३७५० दी गई है। इस प्रकार यहाँ श्लोक संख्या में ऐक्य प्रतीत नहीं होता है।

शैली

समवायांग के समान स्थानांग सूत्र का गुम्फन संग्रह-प्रधान कोष शैली में हुआ है। कण्ठस्थ करने की सुविधा की दृष्टि से बहुत प्राचीन काल से भारतीय साहित्यकार इस शैली का प्रयोग करते आए हैं। महाभारत में वन पर्व अध्याय १३४ में तथा अंगुत्तर निकाय आदि बौद्ध ग्रन्थों में इसी शैली का प्रयोग किया गया है।

प्रथम स्थान में एक संख्यक वस्तुओं एवं क्रियाओं आदि का परिचय होने से उसे 'एक स्थान' या प्रथम स्थान कहा गया है। द्वितीय स्थान में दो संख्यक और तृतीय स्थान में तीन संख्यक। इसी प्रकार क्रमश: बढ़ते हुए अन्त के दसवें स्थान में दस संख्यक तत्त्वों का परिचयात्मक निरूपण किया गया है। द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ स्थान को विषय–विभाग की दृष्टि से ४–४ उद्देशकों में और पंचम स्थान को तीन उद्देशकों में विभक्त कर दिया गया है।

जैनागमों की यह एक अपनी विशिष्ट शैली रही है कि यदि किसी एक शास्त्र में किसी विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके अनन्तर उसी प्रकार का वर्णन अन्यत्र आने पर 'जहा भगवईए', 'जहा जीवाभिगमे' 'जहा पन्नवणाए' लिखकर पाठ को संक्षिप्त कर दिया जाता है, परन्तु स्थानांग में केवल नौवें स्थान में– 'जहा समवाए' यह एक ही स्थान पर आया है। इससे ज्ञात होता है कि स्थानांग का संकलन और समवायांग का संकलन साथ–साथ हुआ होगा। अलग–अलग मुनि मण्डलों द्वारा एक साथ संकलन कार्य हुआ होगा। नौवें स्थान तक लेखन कार्य होने पर पारस्परिक परामर्श चल पड़ा होगा, तभी नौवें स्थान में 'जहा समवाए' पाठ दिया गया है। स्थानांग का गणिपिटक में तीसरा स्थान इसकी प्राथमिकता का द्योतक है और साथ ही इसकी पूर्णता का भी।

स्थानांग सूत्र में सूत्रकार ने कहीं–कहीं अपनी संग्रह-प्रधान कोश शैली का परित्याग भी कर दिया है, जैसे कि चतुर्थ स्थान के द्वितीय उद्देशक में नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन, भगवान विमलवाहन का वर्णन, इसी प्रकार तृतीय स्थान के द्वितीय उद्देशक के अन्त में (३/२/४७) दिए गए प्रश्नोत्तरों में चारित्रों और पर्वतों आदि के परिचय में भी संग्रह शैली को छोड़कर वर्णन शैली को अपना लिया गया है। ऐसा क्यों हुआ? यह निश्चित तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह माना जा सकता है कि इस वर्णन परम्परा में किसी की जिज्ञासा के समाधान का अवसर आने पर उसे भी तत्कालीन वाचनी में उल्लिखित कर लिया गया होगा, प्रश्न उत्पन्न हुआ होगा कि क्या अन्य किसी तीर्थंकर के भी नौ गण हुए हैं? सूत्रकार ने इसका समाधान कर दिया है, कि भविष्य में तीर्थंकर श्री विमल वाहन जी के भी नौ गण होंगे।

संख्या द्योतक शैली

जैनागमों में संख्यावाचक शब्दों की स्थापना अपनी ही शैली में की गई है, जैसे कि 'एक सौ के स्थान पर '**दसदसाई**' (अर्थात् दस गुणा दस संख्या) कहा जाता है।

एक हजार के लिये '**दस सयाइं**' अर्थात् (दस सौ) लिखा जाता है। इसी प्रकार 'एक लाख' के लिये '**दस–सय–सहस्साइं**' पाठ प्राप्त होता है।

इसी प्रकार तीन की संख्या के लिये '**छच्च अद्धं**'[६] (स्था. ६/१९) का प्रयोग किया गया है। इस सूत्र में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में भूतकालीन सुषम–सुषमा काल में मनुष्य शरीर की ऊँचाई छः हजार धनुष बताई गई है, वहीं पर उनकी आयु का निर्देश क्रम प्राप्त था, परन्तु आयु तीन पल्योपम की है, अतः सूत्रकार ने छः की संख्या का क्रम बनाए रखने के लिए '**छच्चअद्धं**' अर्थात् छः का आधा तीन– ''तीनपल्योपम की आयुवाले' कहा है। यदि इस आयु का निर्देश तृतीय स्थान में किया जाता तो इस प्रकरण के साथ उस प्रकरण का कोई संबंध न रह जाता, अतः '**छच्च–अद्धं**' की शैली को क्लिष्ट कल्पना नहीं कहा जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक तुलनात्मक अध्ययन

भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन महापुरुष थे और दोनों एक ही क्षेत्र में प्रचार कर रहे थे। यह ठीक है कि भगवान महावीर का त्याग मार्ग बहुत कठिन था, अतः भगवान महावीर के मार्ग पर चलना प्रत्येक व्यक्ति के लिये शक्य न था, यही कारण है कि जैन संस्कृति को एक सीमित क्षेत्र में ही रहना पड़ गया।

जिस समय भगवान महावीर अपने प्रवचनों द्वारा 'तत्त्वज्ञान' प्रदर्शित कर रहे थे, उसी समय भगवान बुद्ध भी तत्त्वज्ञान के प्रकाशन में लीन थे, दोनों महापुरुष बहुत अंशों में समान तत्त्वज्ञान की बात कह रहे थे और शैली भी दोनों की कहीं–कहीं समान ही हो गई है। स्थानांग सूत्र और अंगुत्तर–निकाय में यह साम्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जैसा कि नीचे लिखे उद्धरणों से स्पष्ट हो रहा है–

स्थानांग सूत्र (चतुर्थ स्थान)	**अंगुत्तर निकाय (चतुर्थ निकाय)**
चत्तारि उदका पण्णत्ता, तंजहा– उत्ताणे णामेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णामेगे गंभीरो भासी, गम्भीरे णामेगे उत्ताणो भासी, गम्भीरे णामेगे गम्भीरो भासी। एवमेव चत्तारि पुरिस जाया	चत्तारो मे भिक्खवे उदकरहदाक तमो– चत्तारो?–उत्तानो गम्भीरो भासो, गम्भीरो उत्तानोभासो उत्तानो उत्तानो भासो, गम्भीरो गम्भीरो भासो, एवमेव खो भिक्खवे चत्तारो उदक रहयमा पुग्गला। नि. ४–१०४
चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तंजहा– गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्ता वि, वासित्ता वि, एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता। एवमेव चत्तारि पुरिसजाया।	चत्तारो मे....बलाहका, कतमे चत्तारो? गज्जित्ता नो वास्सित्ता, वास्सित्ता नो गज्जित्ता, नो गज्जित्ता, नो वासित्ता, गज्जित्ता च वास्सित्ता च। एवमेव चत्तारो मे बलाहकूपमा पुग्गला। निपा. ४–१०१
चत्तारि फला पण्णत्ता, तंजहा– आमे णामेगे आम महुरे, पक्के णामेगे आम महुरे, आमे णामेगे पक्कमहुरे, पक्के णामेगे पक्क महुरे, एवमेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता	चत्तारिमानि अम्बानि, कतमानि चत्तारि? आमं पक्कवण्णि, पक्कं आमवण्णि, आमं आमवण्णि पक्कं पक्कवण्णि एवमेव चत्तारि मे अम्बूपमा पुग्गला। नि. ४–१०६

यह पाठ-साम्य और विषय-साम्य का एक निदर्शन मात्र उपस्थित किया है। अंगुत्तर निकाय के अन्य अनेकों पाठों में इसी प्रकार के साम्य को देखा जा सकता है? यद्यपि स्थानांग सूत्र में पुरुषभेद और अंगुत्तर निकाय में पुद्गल भेद प्रदर्शित करता जा रहा है, परन्तु पुद्गल का अर्थ पुरुष भी होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जैसा कि भगवती सूत्र शतक २०, उद्देशक २, सूत्र ६६४ से ज्ञात होता है।

स्थानांग सूत्र में प्रक्षिप्त अंश

अन्य आगमों के समान स्थानांग सूत्र को देखने से ज्ञात होता है कि सम्यग्दृष्टि-सम्पन्न गीतार्थ मुनीश्वरों ने भगवान् महावीर के समय से प्राप्त श्रुतधारा में यत्र–तत्र कुछ हानि एवं वृद्धि अवश्य की है। उदाहरण के रूप में स्थानांग सूत्र के नौवें स्थान में भगवान महावीर के नौ गणों का उल्लेख किया गया है। जिनके नाम है– गोदासगण, उत्तरबलिस्सहगण, उद्देहगण, चारणगण, ऊर्ध्ववातिकगण, विश्ववातिगण, कामड्ढितगण, माणवगण और कोडिनगण। कल्पसूत्र में कामड्ढितगण का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। यदि कल्पसूत्र वर्णित कामड्ढित कुल से इसकी उत्पत्ति मान भी ली जाय तो भी इन सब गणों का निर्माण भगवान महावीर के काल से लगभग दो सौ वर्ष से लेकर पाँच सौ वर्ष बाद तक माना जाता है, अत: स्थानांग सूत्र में इनका उल्लेख गणों के निर्माण के बाद ही हुआ होगा और इसे किसी गीतार्थ मुनि की संयोजना ही कहा जा सकता है।

इसी प्रकार स्थानांग में सात निन्हवों का उल्लेख मिलता है जिनके नाम हैं– जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गंग, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल। इनमें से जमालि और तिष्यगुप्त तो भगवान महावीर के समकालीन थे, परन्तु शेष निह्नवों का काल भगवान महावीर के निर्वाण वर्ष के तीन सौ साल से लेकर छ: सौ साल बाद तक का माना जाता है। ऐसी दशा में स्थानांग के भीतर इनका उल्लेख इसमें होनेवाली वृद्धि का प्रमाण ही उपस्थित करता है। अत: क्षमाश्रमण देवर्द्धिगणी तक अन्य शास्त्रों के समान स्थानांग में भी हानि-वृद्धि स्वीकार की जा सकती है। इसके अनन्तर शास्त्रों का रूप स्थिर हो गया होगा,ऐसा प्रतीत होता है।

प्रतिपाद्य विषय की विविधता

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि स्थानांग प्रतिपाद्य विषय के वैविध्य की दृष्टि से विश्वकोष है। जो इस महाग्रन्थ में है उसका विस्तार अन्य सभी आगमों में विद्यमान है और जो सभी आगमों में है वह अकेले स्थानांग में है।

तीर्थंकर– स्थानांग में बीस तीर्थंकरों के नाम प्राप्त होते हैं, जैसे– श्री ऋषभदेव, श्री संभवजी, श्री अभिनन्दन जी, श्री पद्मप्रभ जी, श्री चन्द्रप्रभ जी, श्री पुष्पदन्त जी, श्री शीतलनाथ जी, श्री वासुपूज्य जी, श्री विमल जी, श्री अनन्तप्रभु जी, श्री धर्मनाथ जी, श्री शान्तिनाथ जी, श्री कुंथुनाथ जी, श्री अरनाथ जी, श्री मल्लिनाथ जी, श्री मुनिसुव्रत जी, श्री नमिनाथ जी, श्री अरिष्टनेमि जी, श्री पार्श्वनाथ जी, श्री महावीर स्वामी। इन बीस तीर्थंकरों का आयु, देहमान, अन्तर आदि की दृष्टि से जिसका जिस स्थान में वर्णन हो सका है वह किया गया है। परन्तु वर्ण्य विषय के रूप में श्री अजित नाथ जी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुमतिनाथ जी, श्री सुपार्श्वनाथ जी और श्री श्रेयांस नाथ जी का वर्णन नहीं हो सका।

चक्रवर्ती– इस सूत्र में बारह चक्रवर्तियों के नामों का उल्लेख करते हुए शास्त्रकार ने उनका दो रूपों में वर्णन किया है। भरत, सगर, मघव, सनत् कुमार, शान्ति, कुंथु, अर, महापद्म, हरिषेण और जय। ये दस चक्रवर्ती ऐसे हैं जिन्होंने संयम पथ को अपना कर परम-पद प्राप्त किया। सुभूम और ब्रह्मदत्त ये दो ऐसे चक्रवर्ती हुए हैं जिन्होंने संयम से विमुख होकर महारम्भी और महापरिग्रही बनकर विषय सरोवर में किलोलें कीं और अन्त में नरक निवास कर दु:ख भोग रहे हैं।

कर्मों की दृष्टि में किसी का पक्षपात नहीं है, चाहे चक्रवर्ती हो और चाहे साधारण जन, जो जैसा करता है वैसा भरता है, यह अटल सिद्धान्त है।

जीव विज्ञान– स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थान में बताया गया है कि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवों तक के शरीर में हड्डियाँ, मांस और रक्त नामक तीन पदार्थ होते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों एवं सभी तिर्यंच प्राणियों का शरीर मांस, रक्त, हड्डियों, स्नायुओं और शिराओं से बना हुआ होता है।

भूगोल– यह ठीक है कि प्राचीन शास्त्रों में वर्णित भूगोल आधुनिक भूगोल से पूर्णतया मेल नहीं खाता, क्योंकि समय–सयम पर भूगोलीय वातावरण, पृथ्वी की स्थिति और उस स्थिति के बदलने से नदियों आदि के प्रवाह की भिन्नता हो जाती है, फिर भी शास्त्रीय वर्णन के कुछ भाग भूगोल पर प्रकाश डालते ही हैं, जैसे कि– स्थानांग सूत्र में गंगा और सिन्धु का महानदियों के रूप में वर्णन किया गया है, क्योंकि ये नदियाँ अनेक नदियों को साथ में लेकर सागर में प्रविष्ट होती हैं। इनके अतिरिक्त गंगा, यमुना, सरयू, ऐरावती और मही नामक विशाल नदियों का भी वर्णन यथास्थान प्राप्त होता है।

वर्षधर पर्वत जिन्हें सीमा निर्माण करने वाले कहा गया है सम्भवत: वे हो सकते हैं जिनसे मानसून हवाएँ टकरा कर वर्षा करती हैं। इनके अतिरिक्त हिमालय से उत्तर की ओर बहने वाली सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तवती आदि नदियाँ अब परिवर्तित नामों के साथ हैं या नहीं यह भूगोल वेत्ताओं के लिये अन्वेषण का विषय है।

तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला आदि नदियाँ भी खोज का विषय हैं, क्योंकि हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेशों में अब भी ऐसे तप्त जल के स्रोत विद्यमान हैं जिनका जल तप्तजला नदियों के रूप में प्रवाहित होता है। गंगोत्री के पास एक ऐसा स्रोत है जिसमें डाले हुए आलू एवं चावल आदि उबल जाते हैं। आधुनिक शेषधारा जैसी चट्टानों से टकराकर उछलने वाले जल से पूरित नदियों में से तब कोई मत्तजला और उन्मत्तजला भी रही होगी।

कुछ महाह्रदों का भी वर्णन किया गया है, हिमालय की हिमाच्छादित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं हिमाच्छादन से रहित झीलें महाह्रदों के रूप में पहचानी जा सकती हैं।

क्षीरोदा (जिसका जल दूध जैसा दिखाई दे), शीतस्रोता और अन्तर्वाहिनी (बर्फ के या चट्टानों के नीचे ही नीचे बहने वाली अनेकशः नदियाँ), मेरु (संभवतः गौरीशंकर पर्वत) के आस–पास देखी जा सकती हैं।

इसी प्रकार इस विषय के अन्तर्गत भूकम्प के कारणों आदि की विवेचना एवं घनवात, घनोदधि आदि पर अवलम्बित पृथ्वी का वर्णन भूगोलीय अन्वेषणों की मूलाभित्ति प्रस्तुत करते हैं।

खगोलीय वर्णन– इस विषय के मूल तत्त्वों पर भी स्थानांग सूत्र के द्वारा थोड़ा बहुत प्रकाश अवश्य पड़ता है। ज्योतिष-शास्त्र में अट्ठाईस नक्षत्र बताए गए हैं, उनके अधिष्ठाता देवों के नामों का यहाँ उल्लेख है। इनके अतिरिक्त ८८ ग्रहों का उल्लेख भी द्वितीय स्थान के तृतीय उद्देशक में प्राप्त होता है। आधुनिक खगोलशास्त्रियों ने नौ ग्रहों के अतिरिक्त कुछ अन्य हर्षल आदि ग्रहों का भी पता लगाया है, हो सकता है कि वे स्थानांग में वर्णित ८८ ग्रहों के अन्तर्गत ही हों, परन्तु उनके नाम स्थानांग ही बताएगा, चाहे नए नाम रख लिये जाएँ।

स्थान–स्थान पर नक्षत्र और चन्द्र योग पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही किस–किस प्रधान नक्षत्र के साथ कितने अन्य तारों का संबंध है इस विषय की भी विवेचना की गई है।

खगोल-शास्त्र के अन्तर्गत स्थानांग के तीसरे स्थान में अल्पवृष्टि और अतिवृष्टि के भी तीन–तीन कारण बताए गए हैं। उनमें से जलीय पुद्‌गलों (परमाणुओं) के अभाव या अधिकता वाला कारण तो विज्ञान सम्मत ही है। देव, भूत, नाग यक्ष आदि की सम्यक् पूजा का होना या न होना रूप जो कारण सुवृष्टि या अनावृष्टि के लिये प्रदर्शित किया गया है, वह तत्कालीन समाज की देव–पूजा परायणता पर प्रकाश डालता है और हो सकता है उस पर वैदिक देववाद का भी प्रभाव हो, क्योंकि यज्ञों द्वारा संतुष्ट देव ही वहाँ सुवृष्टि के कारण माने गए हैं। वायु द्वारा जलीय पुद्‌गलों को अन्यत्र खींच ले जाना अथवा खींचकर उस स्थान पर लाना रूप कारण अल्पवृष्टि एवं सुवृष्टि के लिये उचित ही हैं।

नवम स्थान में शुक्रग्रह की हय-वीथी, गजवीथी, नागवीथी, वृषभ वीथी, गो-वीथी, उरगवीथी, अजवीथी, मित्रवीथी और वैश्वानर-वीथी ये नौ वीथियाँ बताई गई हैं। ये नौ वीथियां क्या हैं और इनका क्या प्रभाव है यह सब अध्ययन का विषय है।

दशम स्थान में कहा गया है कि कृत्तिका और अनुराधा ये दो नक्षत्र चन्द्र के सभी बाह्य मण्डलों में से दसवें मण्डल में परिभ्रमण करते हैं। यह चन्द्र से कृत्तिका एवं अनुराधा नक्षत्र की माण्डलिक दूरी का वर्णन ज्योतिष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रियों के अन्वेषण का विषय है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कृत्तिका और अनुराधा एक दूसरे के सामने रहनेवाले नक्षत्र हैं, क्योंकि मण्डलाकृति में २८ नक्षत्रों में कृत्तिका के सामने १४वें नक्षत्र के रूप में अनुराधा ही आता है।

इसी प्रकरण में ज्ञानवृद्धि करने वाले दस नक्षत्र बताए गए हैं— मृगशिरा, आर्द्रा, पुष्य, तीनों पूर्वा, मूल, आश्लेषा, हस्त और चित्रा। मुहूर्त चिन्तामणि मे भी विद्यारम्भ के लिये इन्हीं नक्षत्रों को श्रेष्ठ माना गया है।

आयुर्वेद— अष्टम स्थान में कुमार-भृत्य (बाल चिकित्सा) काय-चिकित्सा (शारीरिक शास्त्र) शालाक्य (आँख, नाक, कान, मस्तिष्क और गले की विशेष चिकित्सा, आज भी एलोपैथी में इन अंगों का विशेष अध्ययन भिन्न रूप से करवाया जाता है), शल्य-चिकित्सा (ऑप्रेशन) जंगोली (सांप, बिच्छू आदि के विष की चिकित्सा एवं इनके विषों के नानाविध प्रयोग), भूत विद्या (भूत—प्रेत आदि के शमन का शास्त्र। अब पश्चिम में भी इसका विकास 'पराविद्या' के अन्तर्गत हो रहा है), क्षारतन्त्र (यवक्षार, चणकक्षार, आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा, आज की बायोकैमिक प्रणाली १२ क्षारों पर ही निर्भर है), रसायन (धातुओं, रत्नों एवं पारद गन्धक आदि द्रव्यों द्वारा तैयार की गई औषधियों द्वारा चिकित्सा जिसे विशेषतः बल-वीर्य की वृद्धि के लिये प्रयुक्त किया जाता है) इन आठ रूपों में उस समय प्रचलित आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धतियों का यहाँ उल्लेख किया गया है।

साथ ही नवम स्थान में रोगोत्पत्ति के नौ कारण बताते हुए लिखा है— अति आहार, अरुचिकर भोजन, अतिनिद्रा, अति जागरण, मलवेग का रोकना, मूत्र वेग का रोकना, अति चलना, प्रतिकूल आहार और कामवेग का रोकना या अति विषय-सेवन आदि रोगोत्पत्ति के कारण हैं। ये कारण लोकप्रसिद्ध एवं सर्वमान्य हैं।

इसी प्रकार नौ प्रकार का आयु—परिमाण, दस प्रकार का बल, दस प्रकार की तृणवनस्पतियाँ, तीन प्रकार की परिचारणा, तीन प्रकार के मैथुन सेवियों के भेद, माता से मिलने वाले तीन अंग, पिता से मिलने वाले तीन अंग, मनुष्य और तिर्यंचों की शुक्र और शोणित से उत्पत्ति, तीन—तीन के चार समूहों में स्त्रीयोनि के भेद, बिना पुरुष संसर्ग के गर्भ धारण के पाँच कारण, संसर्ग होने पर भी गर्भाधान न होने के पाँच कारण आदि विषय आयुर्वेद से ही सम्बन्धित हैं।

मनोविज्ञान— दसवें स्थान में वर्णित क्रोधोत्पत्ति के दस कारण, अभिमान होने के दस स्थान, दस प्रकार की सुखानुभूति, दस प्रकार के संक्लेश, दु:खानुभूति के कारण आदि विषयों का विवेचन मनोविज्ञान का ही विषय है।

भौतिक विज्ञान— शब्द भी पुद्गलात्मक है अर्थात् शब्द के भी परमाणु होते हैं, आज तक यह सिद्धान्त शब्द शास्त्रियों को स्वीकार्य नहीं था, परन्तु अब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौतिक विज्ञान ने शब्द परमाणु का होना सिद्ध कर दिया है। शब्द की परिभाषा करते हुए जैन सिद्धान्त दीपिका में कहा गया है कि ''संहन्यमानानां भिद्यमानानां ध्वनिरूप: परिणाम: शब्द:'' अर्थात् टूटते हुए स्कन्धों का ध्वनि रूप परिणाम शब्द है। इसके प्रायोगिक और वैस्रसिक दो भेद माने गए हैं। प्रायोगिक शब्द, जिसका उच्चारण प्रयत्नपूर्वक होता है, वह भाषात्मक (अर्थ—प्रतिपादक) और अभाषात्मक (तत, वितत, धन, सुषिर आदि नानाविध वाद्यों के शब्द) रूपों में दो प्रकार का होता है। वैस्रसिक शब्द मेघादि से उत्पन्न स्वाभाविक ध्वनि को कहा जाता है।

स्थानांग में द्वितीय स्थान के तृतीय उद्देशक में शब्द के भाषा (भाषात्मक) नो भाषा (अभाषात्मक) दो भेद बताए गए हैं। पुन: शब्द के दो भेद बताए गए हैं— अक्षर संबद्ध और नोअक्षर संबद्ध (ध्वन्यात्मक)। नो अक्षर संबद्ध के ही यहाँ तत, वितत, घन और सुषिर आदि भेद किए गए हैं।

शब्दोत्पत्ति के दो कारण बताए गए हैं— पुद्गलों के परस्पर मिलने से और पुद्गलों के परस्पर भेद से। पुद्गल-भेद शब्द ही परमाणु विस्फोट की ओर संकेत कर रहा है।

परमाणु विज्ञान पर जैन संस्कृति ने जो कुछ कहा है वह आधुनिक भौतिक विज्ञान की कसौटी पर शत प्रतिशत खरा उतर रहा है।

काव्य नाट्य आदि

स्थानांग के चौथे स्थान में चार प्रकार के वाद्यों तत (वीणा आदि), वितत (ढोल, तबला आदि), घन (घुंघरू, कांस ताल आदि), सुषिर (बांसुरी आदि) का वर्णन है। चार प्रकार के नाट्य (नृत्य) ठहर—ठहर कर नाचना, संगीत के साथ नाचना, संकेतों द्वारा भाव प्रकट करते हुए नाचना और झुक कर या लेटकर नाचना—का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार चार प्रकार के गायन बताए गए हैं— नृत्य-गायन, छन्द-गायन, अवरोहपूर्वक गायन, आरोह पूर्वक गायन। इसी प्रकरण में चार प्रकार की पुष्प रचना, चार प्रकार के शारीरिक अलंकार, चार प्रकार के अभिनय आदि का वर्णन स्थानांग की विषय विविधता का स्पष्ट प्रमाण है।

गद्य, पद्य, कथ्य (कथा—कहानी) और गेय रूप में चार प्रकार के काव्य भेदों का तथा दशम स्थान में दस प्रकार के शुद्ध वाक्यों के प्रयोग आदि के रूप में वर्ण्य-विषय ने काव्य जगत को ही स्पर्श किया है, स्थानांग यह प्रमाणित कर रहा है।

मानवीय वृत्तियों का अध्ययन— स्थानांग सूत्र में मानवीय स्वभाव का परिचय देने वाले सूत्र सब से अधिक हैं। कहीं वृक्षों से, कहीं वस्त्रों से, कहीं कोरमंजरी से, कहीं कूटागार—शाला से, कहीं वृषभ से, कहीं हस्ती से, कहीं शंख, धूम, अग्नि शिखा, वनखण्ड, सेना, पक्षी, यान, युग्म, सारथी, फल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादल, कुम्भ आदि से समता करते हुए सैकड़ों रूपों में मानवीय वृत्तियों का इस सूत्र में वर्णन किया गया है। उदाहरण के रूप में—

वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—पत्रयुक्त, पुष्पयुक्त, फलयुक्त, छायायुक्त। इसी प्रकार मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं— पत्रयुक्त वृक्ष के समान केवल छाया में आश्रय देने वाले। पुष्पवाले वृक्ष के समान(केवल सद्विचार देने वाले)। फलयुक्त वृक्ष के समान(अन्न—वस्त्रादि देने वाले) और छाया युक्त वृक्ष के समान (शान्ति सुरक्षा और सुख देने वाले)।

एक अन्य उदाहरण में कहागया है— मेघ चार प्रकार के होते हैं—

१. एक मेघ गर्जता है, बरसता नहीं।
२. एक मेघ बरसता है, गर्जता नहीं।
३. एक मेघ गर्जता भी है और बरसता भी है।
४. एक मेघ न गर्जता है, न बरसता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के हाते हैं—

१. कुछ व्यक्ति बोलते हैं, पर देते कुछ नहीं।
२. कुछ व्यक्ति बोलते हैं और देते भी हैं।
३. कुछ व्यक्ति देते हैं, पर बोलते नहीं।
४. कुछ व्यक्ति न बोलते हैं और न देते हैं।

इस सूत्र में केवल मेघ, बिजली, गर्जन, वर्षण आदि से संबंध जोड़ते हुए सात रूपों में मेघ के अध्ययन के माध्यम से मनुष्य स्वभाव का विश्लेषण किया गया है।

इस प्रकार लगभग १०० उपमेय-उपमानों के रूप में उपमेयों के विश्लेषण के साथ—साथ उपमानों के रूप में मनुष्य-स्वभाव का विश्लेषण करते हुए सूत्रकार ने मानवता को हर पहलू से पहचानने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार स्थानांग सूत्र के माध्यम से शास्त्रकार ने जीवन का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

१. स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या—गीता

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास पृ. १७२

३. तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—जाइथेरे, सुत्तथेरे, परियायथेरे। सट्ठिवासज ए समणे णिग्गंथे जातिथेरे, ठाणांग—समवाय—धरेण समणे णिग्गंथे सुयथेरे, वीसवास—परियाए णं समणे णिग्गंथे परियायथेरे। —स्थानांग ३/३/१६५

४. सूत्रकृतांगे त्रयाणां त्रिषष्ट्याधिकानां पाषण्डिकशतानां दृष्टयः प्ररूप्यन्ते, ततो हीन-पर्यायो मतिभेदेन मिथ्यात्वं यायात्। चतुर्वर्ष—पर्यायस्य धर्मेऽवगाढमतिर्भवति, ततः कुसमयैर्नापह्रियते, तेन चतुर्वर्ष—पर्यायस्य तदुद्देष्टुमनुज्ञातम्—तथा पंचवर्षोऽपवादस्य योग्य इति कृत्वा पंचवर्षस्य दशकल्पव्यवहारान् ददाति।' तथा पंचानां वर्षाणामुपरिपर्यायो निकृष्ट उच्यते, तेन कारणेन स्थाने समवाये नवाधीतेन श्रुतस्थविरा भवन्ति, तेन कारणेन तदुद्देशनं प्रतिविकृष्टपर्यायो गृहीतस्तथा स्थानं समवायश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महर्धिकं प्रायेण द्वादशानामप्यंगानां तेन सूचनादिति तेन तत्परिकर्मितमतौ दशवर्षपर्याये व्याख्याप्रज्ञप्तिरुद्दिश्यते।—भाष्यकार

५. सुप्तिङन्तं पदम्।

६. छच्चअद्ध-पलिओवमाइं परमाउं पालइत्ता।

७. द्वीन्द्रिय जीव—त्वचा और रसनेन्द्रिय वाले, त्रीन्द्रिय जीव त्वचा, रसना और नाक वाले। चतुरिन्द्रिय जीव त्वचा, रसना, नाक और आँख वाले। पंचेन्द्रिय जीव त्वचा, रसना, नाक, आँख और कान वाले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org